भारतीय दर्शनों में आत्मतत्त्व

✡ महासती श्री प्रमोदसुधा 'साहित्यरत्न'
[प्रसिद्ध विदुषी स्वर्गीय महासती उज्ज्वलकुमारीजी महाराज की सुशिष्या]

☐

संसार में नाना प्रकार की वस्तुओं और अगणित अवस्थाओं के दर्शन होते हैं। वैचित्र्यपूर्ण दृश्यमान समग्र पदार्थों को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—चेतन और अचेतन। संसार भर के समस्त दार्शनिक इन्हीं दो तत्त्वों की खोज में आगे बढ़े हैं। यद्यपि दर्शन का मुख्य प्रयोजन आत्मविद्या और आत्मदर्शन माना गया है। आत्मा की परिभाषा के रूप में कहा गया है कि इन्द्रियों से अगोचर वह तत्त्व जिसे 'आत्मा' इस संज्ञा से सम्बोधित किया गया है। इसी आत्म तत्त्व की मान्यता भारतीय तत्त्वज्ञान की अत्यन्त प्राचीन और मौलिक खोज है, जो प्रायः समस्त वैदिक-अवैदिक दर्शनों में स्वीकार की गई है। यह मान्यता समस्त भारतीय संस्कृति में प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से सुप्रतिष्ठित पाई जाती है। विश्व के विश्रुत दार्शनिकों ने यह एक मत से स्वीकार किया है कि आत्मदर्शन ही श्रेष्ठ धर्म है। सम्पूर्ण शास्त्र और समस्त विद्याएँ उस परम धर्म के पश्चात् स्वतः ही प्राप्त हो जाते हैं।

हमारे समग्र जीवन चक्र का केन्द्र आत्मा है। यही सृष्टि का सम्राट और शासक है। भारत के समस्त दर्शनों का मुख्य ध्येय-बिन्दु है आत्मा और उसके स्वरूप का प्रतिपादन। आत्म-तत्त्व का स्वरूप जितनी समग्रता के साथ और व्यग्रता के साथ भारतीय दर्शन ने समझाने का महान् प्रयत्न किया है, उतना विश्व के किसी अन्य दर्शन ने नहीं किया। यद्यपि इस सत्य को अस्वीकृत नहीं किया जा सकता कि यूनान के दार्शनिकों ने (Philosophers) ने भी आत्मा के स्वरूप का प्रतिपादन किया है। तथापि वह उतना स्पष्ट और विशद प्रतिपादन नहीं है जितना भारतीय दर्शनों का। यूरोप का दर्शन आत्मा का दर्शन न होकर केवल प्रकृति का दर्शन है। फिर भी जहाँ तक आत्मा के अस्तित्व का प्रश्न है, सभी तत्त्वचिन्तकों ने इसे एक मत से स्वीकार किया है, किन्तु उसके स्वरूप, नित्यत्व आदि के विषय में भिन्न-भिन्न कल्पनाएँ रही हैं, कोई उसे परमाणु रूप मानता है, कोई विश्वव्यापी स्वरूप। कोई संकोच विस्तार मय प्रदेशों वाला मानता है, तो कोई ईश्वरीय रूप मानता है। कोई नित्य कहता है तो कोई अनित्य बतलाता है। इन विविध दार्शनिक विवेचनाओं में, भाषा भेद, कल्पना भेद आदि होते हुए भी आत्मा के अस्तित्व के प्रति किसी को अस्वीकृति नहीं। इससे प्रमाणित होता है : प्रायः सभी दार्शनिक आत्मतत्त्व के अस्तित्व को स्वीकार करते हैं।

आत्म-अस्तित्व-प्रमाण

आत्मा के अस्तित्व को पाश्चिमात्य दार्शनिक (Western Philosophers) भी स्वीकार करते हैं। विश्व-विख्यात तत्त्ववेत्ता प्लेटो तथा अरस्तु (Aristotle) ने कल्पना की है कि आत्मा एक आध्यात्मिक तत्त्व है। प्लेटो आत्मा की पूर्वसत्ता (Pre-existence) तथा उसकी अमरता को भी मानता है। आत्मा अमर है क्योंकि वह तनिक रूप से बौद्धिक है। बुद्धि उसका ईश्वरीय तथा अमर अंश है। अरस्तु (Aristotle) ने कहा—आत्मा, शरीर का, जो पुद्गल है, उसका आभ्यन्तरिक तत्त्व व रूप है। वह प्लेटो के साथ एक मत है कि आत्मा अशारीरिक, अभौतिक तत्त्व है, जो स्वयं स्थित है।

प्लोटिनस (Plotinus) के मत में आत्मा ईश्वर की पुत्री है। विज्ञान स्वरूप होने से आत्मा नित्य है अतीन्द्रिय है, सुगम और क्रियाशील है। वह विचार कर सकता है, उसको स्व-स्वरूप का ज्ञान हो सकता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सेण्ट थोमस एक्विनस (Saint Thomas Aquinas) के अनुसार आत्मा अमर है। इनका मत है कि सृष्टि का, मानव-आत्मा का, और फरिश्तों का निर्माण परमात्मा ने किया है। मानव-आत्मा अपार्थिव है। देह के विलय होने पर आत्मा कार्यशील रहती है।

आधुनिक विचारक डेकार्ट (Descartes), लॉक (Locke), बर्कले (Berkeley) ने प्लेटो तथा अरस्तु के आत्मतत्त्व के सिद्धान्त को पुनर्जीवित किया है। डेकार्ट ने आत्मा को एक आध्यात्मिक तत्त्व माना है, जिसका स्वाभाविक गुण, चिन्तन अथवा चेतन है। डेकार्ट का, आत्म-अस्तित्व को प्रमाणित करने वाला एक प्रसिद्ध सूत्र है—"Cogito ergo sum." I think, therefore I am. मैं सोचता हूँ इसी कारण मेरा अस्तित्व है। लॉक का भी कथन है कि आत्मा एक तत्त्व है, जो अनुभव करता है। वह आत्मा को एक चिन्तनशील तथा पुद्गल को अचिन्तनशील तत्त्व मानता है। बर्कले आत्मा को आध्यात्मिक तत्त्व मानता है, जो विचारों का प्रत्यक्ष करता है, तथा उन पर क्रिया करता है। बर्कले का यह वक्तृत्व इस रहस्य को सूचित करता है कि "आत्मा शब्द से हमारा तात्पर्य उसी तत्त्व से है जो विचार करता है इच्छा तथा प्रत्यक्ष करता है।"

इस आत्मतत्त्व परम्परा (The soul substance theory) की डेविड ह्यूम (David Hume) ने कड़ी आलोचना की। उसका तर्क रहा है कि आत्मतत्त्व के अस्तित्व के लिए कोई सबूत नहीं है। हमें इसका कोई ज्ञान भी नहीं है। हम उसे कभी प्रत्यक्ष भी नहीं कर सकते। यह तथाकथित आध्यात्मिक तत्त्व हमारी पकड़ में नहीं आता। फिर भी आत्मतत्त्व की कल्पना ह्यूम ने मानसिक अवस्थाओं के क्रम रूप में की है। उसका आत्मविषयक प्रत्यय, आत्मा का अनुभवाधारित प्रत्यय (Empirical conception) है जो बौद्धदर्शन की भाषा में आत्म-विज्ञान सन्तान है।

काण्ट ने आत्मविषयक प्राचीन सिद्धान्त की आलोचना की। इनका आत्मविषयक प्रत्यय (The theory of Nominal self) कहलाया है। आध्यात्मिक मत वालों (The Idealistic view) का यह कथन है कि आत्मा एक मूर्त आध्यात्मिक एकता है, जो मानसिक अवस्थाओं में अभिव्यक्त होती है। इसी तरह भौतिकवादी सिद्धान्त वालों (The Materialistic theories) में यूनानी भौतिकवादी डिमोक्राइटस ने कल्पना की कि आत्मा सूक्ष्मतर, स्निग्धतर तथा गोल परमाणुओं से बना हुआ है। प्रो० मेक्समूलर भी आत्मा के अस्तित्व में समर्थन करते हुए कहते हैं कि I am therefore I think. मेरा अस्तित्व है इसीलिए मैं सोचता हूँ। मैकडानल, शॉपन हावर, लौसिंग हर्डर आदि पाश्चिमात्य चिन्तकों ने आत्मा की मौलिकता एवं अविनाशिता को स्वीकार किया है। अमूर्तिक आत्मा विचार का विषय है, वह भौतिक विज्ञान के बाहर की वस्तु है। पाश्चात्य दर्शनों में आत्मा का जो सविस्तार से वर्णन आया है वह मुख्यतः जड़ प्रकृति को समझने के लिये हैं, फिर भी इससे यह स्पष्ट होता है कि उनका आत्मा के अस्तित्व में विश्वास रहा है।

भारतीय दर्शनों में आत्मा का अस्तित्व—चार्वाक्दर्शन के अतिरिक्त शेष सभी भारतीय दर्शन आत्मा के अस्तित्व के विषय में एक मत है। सभी भारतीय दर्शनों में आत्मतत्व को चेतनामय, ज्ञानमय और अनुभूतिमय शक्ति-सम्पन्न स्वीकार किया है। इससे सिद्ध होता है कि भारतीय दर्शन का चिन्तन मूल में एक जैसा ही है। इसका मूल ध्येय भी सत् चित् आनंद की उपलब्धि है।

भारतीय चिन्तकों ने 'आत्मा' को सबसे ऊँचा स्थान दिया है। चैतन्य आत्मा का ही गुण या स्वरूप माना जाता है। हमारी क्रियायें या चेष्टाएँ सभी आत्मा के अधीन मानी जाती है। ऐसी स्थिति में आत्मतत्व के स्वरूप का क्रमिक विकास हमारे दर्शनों में समन्वय रूप में एकसूत्र में परस्पर सम्बद्ध हमें मिलता है। भारतीयदर्शन क्षेत्र में समुच्चय रूप से यह एक पूर्ण सत्य स्थापित किया गया है कि आत्मा अवश्यमेव है तथा अपरिमित शक्ति-सम्पन्न एवं अचिन्त्य स्वरूप वाले ईश्वर तत्व से इनका घनिष्ठ सम्बन्ध है।

न्याय और वैशेषिकदर्शन आत्मा तथा ईश्वर को दोनों को पृथक्-पृथक् मानते हैं जबकि वेदान्त सांख्य आदि प्रमुख सम्प्रदाय आत्म तत्व में काल्पनिक भिन्नता बताते हुए दोनों को एक ही तत्व बताते हैं। न्याय-वैशेषिक दर्शन आत्मा की अमरता में विश्वास रखते हैं किन्तु आत्मा को वे कूटस्थ-नित्य और विभू मानते हैं। आत्मा ज्ञाता, भोक्ता और कर्ता हैं। आत्मा अनंत तथा सर्व विद्यमान है। आत्मा की स्वरूप में अवस्थिति ही मोक्ष है।

सांख्यदर्शन भी चेतन की सत्ता को स्वीकार करते हैं, उसे नित्य और विभू मानते हैं। इनकी दृष्टि में आत्मा ज्ञाता और द्रष्टा है, यह केवल ज्ञाता ही हैं, भोक्ता तथा क्रियाशील कर्ता नहीं।

मीमांसादर्शन भी आत्मा की अमरता को स्वीकार करता है। वेदान्तदर्शन में आत्मा के स्वरूप का प्रतिपादन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तो अद्वैत की चरम सीमा पर पहुँच गया है। अद्वैत वेदान्त में आत्मा के विषय में लिखा गया है कि 'आत्मा एक नित्य एवं स्वयं प्रकाश है। वह न ज्ञाता है, न ज्ञेय और न अहं ही है। विशिष्टा द्वैत, वेदान्त, आत्मा केवल चैतन्य ही नहीं, ज्ञाता भी है—

"ज्ञाता अहमर्थ एवात्मा।"

अद्वैत वेदान्त के प्रबल समर्थक शंकराचार्य का मत है—"आत्मा एक अनश्वर सर्वव्यापी सत्-चित् आनंद है। चित् तथा आनंद उसका स्वरूप है। आत्मा ही चरम है तथा ज्ञाता और ज्ञेय के भेद से परे है। यह दिक्-काल तथा कार्य-कारणत्व के भेद से परे है। यह बौद्धिक ज्ञान से परे शुद्ध चैतन्य है। पंचाध्यायी में भी लिखा है:—

"अहं प्रत्ययवेद्यत्वात् जीवस्यास्तित्वमन्वयात्।-"

प्रत्येक आत्मा में जो अहं प्रत्यय—"मैं" पने का बोध है, वह जीव के पृथक् अस्तित्व को सूचित करता है।

क्षणिकवादी बौद्धदर्शन भी आत्मा की सत्ता को स्वीकार करता है। यद्यपि पश्चात्वर्ती सुप्रसिद्ध दार्शनिक नागार्जुन तथा दिङ्नागादि आत्म-तत्व के सम्बन्ध में आश्चर्यजनक 'शून्यता' जैसी कल्पना करते हुए पाये जाते हैं। फिर भी प्रच्छन्न रूप से आत्मतत्व की स्वीकारोक्ति उनमें भी परिलक्षित होती है। डेविड ह्यूम (David Hume) की भाँति बौद्ध भी स्थायी आत्मा को नहीं मानते। इस सिद्धान्त का यह अर्थ है कि स्थायी आत्मा नाम की कोई वस्तु नहीं है। वे आत्मा को मानसिक प्रक्रियाओं का क्रम मात्र अथवा विज्ञान सन्तान मानते हैं।

जैनदर्शन में आत्मतत्व को स्पष्ट रूप से स्वीकार किया गया है। आत्मतत्व की पूर्ण विकसित अवस्था को ईश्वरत्व माना गया है। इस दर्शन के अनुसार प्रभात्मा, जीवात्मा ज्ञाता है, भोक्ता भी है और कर्ता भी—अर्थात्—वह जानने वाला, सुखानुभव करने वाला और कर्म करने वाला है। प्रत्येक जीव शरीर और आत्मा की संग्रथित रचना है, जिसमें आत्मा क्रियाशील साझीदार एवं शरीर निष्क्रिय भागीदार है। आत्मा के आयाम है। उसके अगुरूलघु गुण को लेकर संकोच और विस्तार रूप भी है। आत्मा जो संख्या में अनंत है, लोकाकाश में अथवा इस पार्थिव जगत में भी देश के असंख्यस्थलों को घेरती है।

आत्मा इन्द्रियों एवं शरीर से सर्वथा भिन्न एक चेतन स्वरूप सत्ता है। आत्मा की स्थिति अपने शरीर की स्थिति के ऊपर निर्भर रहती है। जिस प्रकार एक दीपक चाहे छोटे से छोटे पात्र में रखा जाये, चाहे एक बड़े कमरे में वह सारे स्थान को प्रकाशित करता है, इसी प्रकार जीव भी भिन्न-भिन्न शरीरों के आकारों के अनुकूल रूप से सिकुड़ता और फैलता है। मुक्त आत्माएँ इन सबसे ऊपर रहती है। वह शुद्ध-बुद्ध बन कर चिरन्तन स्थिति को पा लेती है।

जैनदर्शन के अनुसार आत्मा एक अजर अमर अविनाशी तत्व है। आत्मा इनकी दृष्टि में एक स्वतंत्र अस्तित्व वाला द्रव्य है। वह नित्य है, शाश्वत है। आगम साहित्य में आत्म-अस्तित्व के पर्याप्त प्रमाण मिलते हैं—

"अहं अव्वए वि, अहं अवट्ठिए वि

—ज्ञाता सूत्र१।५

मैं (आत्मा) अव्यय=अविनाशी हूँ, अवस्थित=एक रस हूँ। आत्मा ज्ञानमय है। **"उवओग एव अहमिक्को"** (समयसार ३७) मैं एकमात्र उपयोगमय=ज्ञानमय हूँ। वैसे ही—

अहमिक्को खलु सुद्धो दंसणणाणमइयो सदा रूवी।
ण वि अत्थि मज्झ किंचि वि अण्णं परमाणुमित्तं पि॥

—समयसार ३८

आचार्य कुन्दकुन्द ने आत्म-अस्तित्व के स्वरूप को दिखाते हुए कहा है—आत्मा में चिन्तन की यह शक्ति निहित है, वही द्रष्टा बनकर यह सोचती है—मैं तो शुद्ध ज्ञानदर्शन स्वरूप सदा काल अमूर्त, एक शुद्ध शाश्वत तत्व हूँ। परमाणु मात्र भी अन्य द्रव्य मेरा नहीं है। इस प्रकार आत्म-अस्तित्व को सूचित करने वाले प्रमाणभूत तत्त्व, यत्र-तत्र-सर्वत्र आगम साहित्य एवं प्रकीर्णक साहित्य में पाये जाते हैं। यह आत्मतत्व की मौलिक विचारधारा जो कि अपने आपमें एक विलक्षण स्वरूपवाली होती हुई परिपूर्ण रूप से सत्यमय एवं श्रद्धेय रूप है। विश्व को यह जैनदर्शन की अपनी, विलक्षण देन सिद्ध होती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आत्मस्वरूप-मीमांसा :

आत्मतत्व के निरूपण के पश्चात् आत्मा का स्वरूप क्या है ? इस पर भी भारतीय दार्शनिकों ने कुछ प्रकाश डाला है। पाश्चात्य तत्व चिंतकों ने भी विविध रूप में इसे स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है। नवीन बाह्य विषयवादी के अनुसार, आत्मा बाह्य विषय नहीं है, जिस पर स्नायु मंडल प्रतिक्रिया करता है। यह शरीर का स्नायुमंडल और दैहिक प्रयोजन भी नहीं है, यह ज्ञान का विषय है, ज्ञाता नहीं हो सकता। आत्मा प्राण शक्ति जैव क्रियाओं को उत्पन्न करती है। चेतन आत्मा इन क्रियाओं का कारण नहीं है। नव्य विषयवादी (New Realist) के अनुसार आत्मा कर्ता है, जिसके ज्ञान का साधन इन्द्रियाँ तथा स्नायुमंडल है। कारण कर्ता हो नहीं सकता। आत्मा चेतन ज्ञाता है। चेतना और ज्ञान इसका स्वरूप है। ज्ञान शून्य अचेतन आत्मा प्रकृत आत्मा नहीं है। ज्ञान इसका आगन्तुक गुण नहीं है परन्तु इसका स्वरूप है। आत्मा को द्रव्य (Substance) कहना उचित नहीं है। अचेतन पदार्थ (Matter) ही द्रव्य है। आत्मा ज्ञाता (Subject) है। Self consciousness इसका स्वरूप है। एक आत्मा दूसरी आत्मा में विलीन नहीं हो सकती। आत्माएँ पृथक-पृथक् स्वयं स्थित तत्व है। आत्मा में किसी ने अनन्त ज्ञान, अनन्त प्रेम, अनन्त शक्ति का होना बताया तो किसी का ध्यान उसकी सीमाहीनता की ओर गया। आत्मा सीमाहीन अनन्त है! आत्मा केवल विज्ञान, सन्तान अथवा क्षणिक मानसिक क्रियाओं का क्रम नहीं है। यह केवल चेतना प्रवाह भी नहीं है। आत्मा में व्यक्तित्व (Personality) तथा आत्म-नियन्त्रण (Self determination) व संकल्प स्वातंत्र्य समाविष्ट है। इस प्रकार पाश्चात्य विचारकों में आत्म-स्वरूप के विषय में काफी चर्चास्पद विवेचन पाया गया है।

भारतवर्ष का एक शाश्वत विचार चला आया है कि आत्मा शुद्ध, बुद्ध निर्मल और निर्विकार स्वरूप है। भगवान् महावीर ने भी कहा है कि प्रत्येक प्राणी में आत्मा की अनन्त शक्तियां, अमित उज्ज्वलता छिपी है। इसी दृष्टि से मन्त्रद्रष्टा ऋषियों ने यह उद्घोष किया '**आत्मानं विद्धि**" अपनी आत्मा को पहचानो। इस एक सिद्धान्त में समस्त धार्मिक उपदेश और युग पुरुषों की शिक्षाएँ समाविष्ट हैं। मनुष्य के अपने अन्दर वह आत्मा है जो प्रत्येक वस्तु का केन्द्र है। आत्मा का प्रत्येक कार्य सृजनात्मक कार्य है, जबकि अनात्मा के सभी कार्य वस्तुतः निष्क्रिय होते हैं। संसार में कोई भी आत्मा एक-दूसरे से भिन्न नहीं है। सभी आत्माएँ समान रूप से अनन्त गुणों की भंडार है। एक आत्मा में जितने गुण हैं, उतने ही और वैसे ही गुण शेष सभी आत्माओं में विद्यमान हैं। ज्ञान, दर्शन, आनन्द, अमरता, सात्विकता आदि सभी गुण प्रत्येक आत्मा के मूल धर्म है। इन गुणों को बाह्य पदार्थों से प्रेरित अथवा जनित नहीं समझना चाहिये। ये वैभाविक नहीं, स्वाभाविक गुण हैं।

भारतीयदर्शन में आत्म-स्वरूप के प्रतिपादन में सबसे अधिक विवादास्पद प्रश्न यह है कि ज्ञान आत्मा का निजगुण है अथवा आगन्तुक गुण ? आत्मा ज्ञान स्वरूप है, ज्ञानमय है इसको भारत का प्रत्येक अध्यात्मवादी दर्शन स्वीकार करता है। न्याय और वैशेषिक दर्शन ज्ञान को आत्मा का असाधारण गुण स्वीकार करते हैं, परन्तु उनके यहाँ वह आत्मा का स्वाभाविक गुण न होकर आगन्तुक गुण है। उक्त दर्शनों के अनुसार जब तक आत्मा की संसार अवस्था है तब तक ज्ञान आत्मा में रहता है परन्तु मुक्त अवस्था में ज्ञान नष्ट हो जाता है। इसके विपरीत सांख्य और वेदान्त दर्शन ज्ञान को आत्मा का निजगुण स्वीकार करते हैं। वेदान्तदर्शन में एक दृष्टि से ज्ञान को आत्मा कहा गया है। वेदांत में कहा गया है—"**विज्ञानं ब्रह्म**" विज्ञान ही ब्रह्म है, परमात्मा है। और उसके आगे कहा है "**तत्वमसि**"—तू वह है, अर्थात् तू ही ज्ञान है और तू ही परमात्मा है।

जैनदर्शन में आत्मा के लक्षण और स्वरूप के सम्बन्ध में अत्यन्त सूक्ष्म, गम्भीर और व्यापक विचार किया गया है। आत्मा जैनदर्शन का मूल केन्द्र बिन्दु रहा है, जैनदर्शन और जैन संस्कृति का प्रधान सिद्धान्त रहा है—आत्म-स्वरूप का प्रतिपादन और आत्मस्वरूप का विवेचन। जैनदर्शन की भाषा में ज्ञान ही आत्मा है। भगवान् महावीर ने आचारांग सूत्र में स्पष्ट प्रतिपादित किया है कि—

"जे आया से विण्णाया, जे विण्णाया से आया।"

अर्थात्—जो ज्ञाता है वही आत्मा है और जो आत्मा है वही ज्ञाता है। आत्मा ज्ञान स्वरूप है। जहां आत्मा का अस्तित्व नहीं, वहाँ ज्ञान का भी अस्तित्व नहीं। सूर्य और उसके प्रकाश को कभी पृथक् नहीं किया जा सकता वैसे आत्मा से ज्ञान को पृथक् नहीं किया जा सकता। जहां अग्नि है, वहीं उष्णता है। जहाँ मिश्री है वहाँ मिठास है। जहाँ आत्मा है वहां ज्ञान है। आत्मा और ज्ञान का सम्बन्ध एकपक्षीय नहीं उभय पक्षी है। जहाँ-ज्ञान है वहाँ आत्मा है

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और जहां-आत्मा है वहाँ ज्ञान है। ज्ञान कभी आत्मा से अलग नहीं होता। जैनदर्शन के महान् दार्शनिक आचार्य अमृतचन्द्र ने भी कहा है :—

"आत्मा ज्ञानं स्वयं ज्ञानं, ज्ञानादन्यत्, करोति किम् ?"

—आत्मा साक्षात् ज्ञान है और ज्ञान ही साक्षात् आत्मा है। ज्ञान और आत्मा दो नहीं, एक ही है। आत्मा की व्याख्या करते हुए जैन मनीषियों ने बताया :—

केवल णाण सहावो केवल दंसण-सहाव सुहमइओ।
केवल सत्तिसहावो सोहं इदि चिन्तए णाणी।'

अर्थात्—आत्मा एकमात्र केवलज्ञान और केवलदर्शन स्वरूप है, संसार के सर्व पदार्थ को जानने-देखने वाला है। वह स्वभावतः अनन्त शक्ति का धारक और अनन्त सुखमय है। आचार्य कुन्द-कुन्द के अध्यात्म ग्रन्थ तो प्रधानतया आत्म स्वरूप का ही प्रतिपादन करते हैं। तर्क युग के आचार्य भी तर्कों के विकट वन में रहते हुए भी आत्मा को भूले नहीं। इस प्रकार जैनदर्शन ने अपनी संपूर्ण शक्ति आत्मस्वरूप के प्रतिपादन में लगादी है।

आत्मा को देखने का प्रयत्न करते हुए ऋषियों ने, चिन्तकों ने, दार्शनिकों ने, तत्ववेत्ताओं ने अपने-अपने, भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण से भिन्न-भिन्न समय में, उपासना के द्वारा चिन्तन-मनन के द्वारा, अपने-अपने अनुभवों को शब्द शृंखलाओं में आबद्ध किया। आत्मा तथा उसके गुणों के क्रमिक विकास के अनुसार क्रमबद्ध एक शृंखला में गोपुच्छाकार, सूत्रबद्ध जपमाला के समान उन विकसित रूपों को गूंथकर दार्शनिक ग्रन्थों के रूप में रखने का प्रयत्न किया।

इस प्रकार सभी दर्शनों में जड़ और चेतन या ब्रह्म और माया को स्वीकार किया गया है। अनेक कथनों में उसके स्वरूप की भिन्नता भले ही हो, परन्तु आत्मा के अस्तित्व पर सन्देह नहीं किया जा सकता। अन्ततः निष्कर्ष स्वरूप में कहा जा सकता है कि आत्मा ज्ञानमय है भगवद्गीता की भाषा में अविनाशी, स्वभावतः ऊर्ध्वगामी और जड़ तत्व से भिन्न है। जड़ तत्व से भिन्नता के रूप में किसी न किसी रूप में वैज्ञानिकों ने भी विचार किया है। वस्तुतः वह चेतना अन्य कुछ भी नहीं, बल्कि आत्मा ही है। क्योंकि 'मैं' हूँ इस अस्तित्व का बोध अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

☆

पुष्कर वाणी

शिशु का हँसना शिशु का रोना, हँसने का माध्यम बनता।
शिशु के साथ खेलने का कुछ, रंग अनोखा ही छनता।।
अधिक न सोता, अधिक न रोता, होता अधिक उदास नहीं।
अधिक मोह करने का मानो, शिशु को पूर्वाभ्यास नहीं।।
शैशव का सौन्दर्य साहजिक, आवश्यक शृंगार नहीं।
शिशु के मन पर तन पर अंकित कोई पाप विकार नहीं।।
शिशुमय प्रभु हैं, प्रभुमय शिशु है, कृतियाँ भिन्न भावना एक।
शिशु को देख, देख या प्रभु को, इन दोनों के रूप अनेक।।
कुछ सुनकर कुछ देखभालकर, शिशु मन करता ग्रहण तुरंत।
आगे जाकर उसी ज्ञान का, हो जाता विस्तार अनन्त।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org